International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 3; Issue 5; May 2016; Page No. 303-305

उदय प्रकाश की कहानियों में जनवादी चेतना

[1] पल्लवी रिनाहिते [2] डॉ. रमेश कुमार गोहे

[1] शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, गुरू घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़
[2] सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गुरू घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ

प्रस्तावना: हिन्दी साहित्य के इतिहास में जितने भी दौर चले सभी किसी न किसी विचारधारा या प्रवृत्ति से प्रभावित रहे। आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक जितने भी साहित्य सृजन कर्ता रहे हैं वे भी किसी न किसी विचारधारा से अनुप्राणित रहे हैं। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रत्येक रचनाकार का वैचारिक धरातल तय करने में देशकाल एवं वातावरण की भूमिका प्रमुख होती है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दौरान ही साहित्यकारों पर वामपंथी रंग चढ़ने लगा था। उनकी रचनाएँ प्राकृतिक एवं श्रृंगारिक वर्णनों से बाहर निकलकर सामाजिक सराकारों से जुड़ने लग गयी थी। जनवाद के उदय ने रचनाओं को सामाजिक सरोकारों से जुड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1930 के पश्चात विश्व में छायी आर्थिक मन्दी ने समाजवादी विचारधारा के प्रति लोगों में तीव्र आकर्षण पैदा किया। भला इससे बुद्धिजीवी वर्ग कैसे प्रभावित रहता, परिणामस्वरुप ई. एम. फॉस्टर की अध्यक्षता में फ्रांस में प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन का गठन हुआ। उससे प्रेरणा लेकर भारत (लखनऊ) में भी प्रगतिशील मंच का प्रथम अधिवेशन हुआ। जिसकी अध्यक्षता कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने की। इस सम्मेलन की विशेषता यह रही कि इसने साहित्य को जनवाद और सामाजिक सरोकारों की जड़ों से और भी मजबूत ढंग से जोड़ दिया। हिन्दी साहित्य में 'जनवाद' प्रगतिवाद का ही संस्करण है। इसलिए जनवादी चेतना में जो स्वर मिला है वह मार्क्सवादी दर्शन से अनुप्राणित है। हिन्दी साहित्य में जनवादी कहानी का प्रादुर्भाव सातवे दशक के अंत में हुआ। जनवादी कहानी की यह विशेषता रही कि उसने आम आदमी की जिंदगी उसकी रोजमर्रा की समस्याओं एवं संघर्षों को उकेरा। "जनवादी कहानी न केवल किसानों और मजदूरों की कहानी है बल्कि कस्बे, शहर, महानगर के हर एक शोषित जन की कहानी है। इसमें वर्ग–संघर्ष तथा राजनीतिक संघर्ष को प्रमुख रुप से लिया गया है। जनवादी कहानी स्फूर्त चेतना की कहानी है। जनवादी कहानी की चेतना क्रांतिधर्मी चेतना है। जो मानव अस्तित्व पर आघात पहुंचाने वाली किसी भी प्रकार की शोषक व्यवस्था का चाहे वह सामंतवादी, पूंजीवादी, साम्राज्यवादी तथा छद्मवेशी समाजवाद ही क्यों न हो, का विरोध करती है और जनसमुदाय को जागृत करती है। जनवादी कहानी देश के बहुसंख्यक वर्ग किसान, मेहनतकश सर्वहारा वर्ग के हितों के लिए इंकलाबी संदेश देती है।"[1]

उदय प्रकाश का भी जनवादी आंदोलन से प्रभावित रहा है। उदय प्रकाश स्वयं करीबन 25 वर्षों तक मार्क्सवादी एवं कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्ड होल्डर रहे। वे मूलतः कवि हैं। लेकिन इसके अलावा उन्होंने कहानी, निबंध, आलोचना, व्यंग्य एवं अनुवाद पर भी अपनी लेखनी चलायी है। उदय प्रकाश ओम निश्चल से बातचीत में कहते हैं – "ओम जी मैं मूलतः हूँ। इसको मैं भी जानता हूँ और बाकी सब भी जानते हैं। मैं तो अक्सर मजाक में कहा करता हूँ कि मैं एक ऐसा कुम्हार हूँ, जिसने धोखे से एक कमीज सिल दी, अब सब उसे दर्जी कह रहे हैं। सच तो यह है कि मैं दरअसल कुम्हार ही हूँ।"[2]

उनके पास कविता की अपनी जमीन है जो उसे सहज रुप से जनवादी सरोकारों से जोड़ देती है।

"बचाना ही हो तो बचाए जाने चाहिए,
गाँव में खेत, जंगल में पेड़ शहर में हवा
पेड़ों में घोसलें, अखबारों में सच्चाई,
राजनीति में नैतिकता, प्रशासन में नैतिकता,
दाल में हल्दी।"[3]

कुछ ऐसा ही स्वर उनकी कहानियों में देखने को मिलता है। उनका समस्त लेखन एक यात्रा है अपने समय की यात्रा। एक विकराल और भयंकर होते समय की यात्रा। लेकिन यह समय ऐसा क्यों है ? इसकी जाँच–पड़ताल करना एक जोखिम भरा कार्य है। उदय प्रकाश अपनी कलम के माध्यम से इस जोखिम को उठाते हैं। हिंसा, विकास–प्रक्रिया, राजनीति, धर्म, स्त्री–दलित शोषण, पूंजीवाद, उपनिवेशवाद, भूमंडलीकरण, पुलिस, प्रशासन, शिक्षा एवं फैशन इन समस्त चीजों का जिक्र उनकी कहानियों का केन्द्र बिन्दु है। इनकी कहानियाँ भारतीय समाज की विसंगतियों, विद्रुपताओं और विड़म्बनाओं की कहानी है, इसमें उस समाज के दुःख, पीड़ा, हताशा, त्रासदी एवं उसके संघर्ष मौजूद हैं।– "समकालीन भारतीय समाज में आयी विकृतियों, इस समाज में रहने वाले 'व्यक्ति' के चारों ओर बढ़ते दबाव और उसके कारण उसके टूटते जाने की कथा ही वे अपनी कहानियों में कहते हैं।"[4]

कहानी विद्या की दृष्टि से उदय प्रकाश जी ने कहानी के नये प्रतिमान गढ़े हैं। वे कहानियों को निश्चित बंधी–बंधायी इमेज से तोड़कर एक नये स्वरुप में प्रस्तुत करते हैं। वे अपनी कहानियों में इतिहास–कल्पना, मिथ–यथार्थ, ...एवं स्मृति–संवेदना का इस प्रकार संयोजन रखते हैं जहाँ कथा तत्व और सामाजिक चिंतन दोनों फलीभूत होते हैं। "उदय प्रकाश अपने समय के एक जरुरी कहानीकार के रुप में सामने आते हैं। एक ऐसा कहानीकार जो कहानी में सच–झूठ का संश्लिष्ट गुम्फन कहानी की संवेदना के साथ करते हुए, दास्तानों और किस्सों की भाषा से गल्प का शिल्प निर्मित करते हैं। उपर से देखने पर तो वे सामान्य सी कहानियाँ लग सकती हैं, लेकिन गहराई से देखें तो अपने समय के जरुरी सवालों से टकराने वाली बड़ी चिन्ताओं की कहानी है।"[5]

उदय प्रकाश जी की कहानियों में हम सबसे पहले टेपचू का जिक्र करेंगे। जो 1982 में प्रकाशित हुई। यह कहानी अपनी रचना प्रक्रिया में मजदूर वर्ग पर लिखी जाने वाली अन्य कहानियों से एकदम भिन्न है। कहानी आरंभ होकर अपने परिणाम पर पाठकों को चमत्कृत कर देती है। टेपचू थके हारे अदम्य जीजिविषा वाले आदमी का प्रतीक है, जो मौत के हर फंदे को नाकाम कर जीवित रहता है। उसके विरुद्ध चक्र चलाने वाले व्यक्ति को भी यह मानना पड़ता है कि 'टेपचू' कभी नहीं मरेगा, साला जिन्न है। इस प्रकार कहानीकार ने एक अविस्मरणीय पात्र की रचना की। यह आज के सामाजिक यथार्थ की कहानी है और इतने समय के पश्चात भी कथ्य के स्तर पर ताजी जान पड़ती है। रचनाकार कहानी के अंत में कहता है– "यह कहानी नहीं है, सच्चाई है। आप स्वीकार क्यों नहीं कर लेते

कि जीवन की वास्तविकता किसी भी काल्पनिक साहित्यिक कहानी से ज्यादा हैरतअंगेज होती है। और फिर ऐसी वास्तविकता जो किसी मजदूर के जीवन से जुड़ी हुई हो।"[6]

गोपाल राय ने इस सम्बन्ध में लिखा है– "कहानी में एक पात्र, टेपचू के माध्यम से यह बताया गया है कि हाशिए पर का आदमी कभी नहीं मरता। उसे लाख मारना चाहो, वह बार–बार पुनर्जीवित हो उठता है।"[7]

टेपचू के माध्यम से लेखक यह बताना चाहता है कि अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध आम आदमी की लड़ाई समाप्त नहीं होने वाली है वह निरंतर गतिशील रहेगी।

उदय जी एक अन्य महत्पपूर्ण कहानी तिरिछ है। जो अपने शिल्प, विन्यास एवं स्वरुप में विलक्षण है। यह कहानी शहरों में समाप्त होती संवेदना को उभारने वाली मार्मिक कहानी है। मैं की शैली में लिखी गयी इस कहानी में पिताजी 'तिरिछ' जो कि एक विषैला जन्तु है, के काटने से नहीं मरते बल्कि शहरी जीवन की संवेदनहीनता एवं निर्ममता के कारण मरते हैं। पिता को दूसरी सुबह शहर जाना था, अदालत में पेशी थी। लेकिन उसी दिन उन्हें तिरिछ ने काटा था जिसका इलाज उन्होंने करा लिया था। गाँव के ही पंडित रामओंतार पाण्डे ने दवाई के रुप में धतूरा का काढ़ा पिला दिया था जिसके कारण उनका मानसिक सन्तुलन खराब हो गया और वे इस शहर में अपनों को ढूढने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रक्रिया में वे अनेक विषम परिस्थितियों से गुजरे। उन्हें मार–पीटा गया उनके खिलाफ अफवाह फैलायी गयी और अन्ततः उनकी दर्दनाक मृत्यु हुई। "नेशनल रेस्टोरेंट के नौकरों और मालिक सरदार सतनाम सिंह ने जैसा बताया था। उसके अनुसार पिताजी को बहुत चोटें आयी थी। उनकी कनपटी, माथे, पीठ और शरीर के दूसरे हिस्सों पर कई ईट और ढेले आकर लग गये थे। सड़क का ठेका लेने वाले ठेकेदार अरोड़ा के लडके संजू ने इन्हें दो–तीन बार लोहे की रॉड से मारा था। सत्ते का कहना था कि इतनी चोटों से तो कोई भी आदमी मर सकता था।"[8]

लेखक इस कहानी के जरिए यह बताना चाह रहा है कि जिस विषैले जन्तु तिरिछ की बात की जा रही है। जिसके काटने से व्यक्ति मर सकता है वह जंगल में नहीं बल्कि शहर में है। शहर की अतिव्यवसायिकता और संवेदनहीनता तिरिछ से कम विषैली नहीं है। संवेदना के स्तर पर समाज दिन–बदिन क्षरित होता जा रहा है।

संवेदना के स्तर पर देखे तो 'छप्पन तोले का करधन' रिश्तों के मध्य खत्म होती संवेदनशीलता को दिखने वाली कहानी है। इसके जरिए लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न कर रहा है। भौतिक चकाचौंध के इस युग में रिश्ते अब महत्वहीन हो गये हैं। पूंजी ही सबसे बड़ी सच्चाई है। कहानी की पात्र बूटी लाचार दादी माँ की किसी को कोई फिक्र नहीं है। यदि कोई फिक्र है तो वह है छप्पन तोले का करधन किस प्रकार उनसे प्राप्त किया जाय। उस करधन को प्राप्त करने के लिए दादी माँ को अंधेरी कोठरी में बन्द कर दिया गया है। उस अंधेरी कोठरी का एक दृश्य– "वह एक बहुत छोटा, संकरा और जमीन में धंसा अंधेरा कमरा था, जिसकी चौखट इतनी नीची थी कि लगभग बैठकर उस दरवाजे से कमरें में उतरना पड़ता था। कमरे का फर्श जमीन की सतह से कम से कम डेढ़ बीता नीचे था। वहाँ हमेशा अंधेरा होता था, दिन में भी। वे शयद कमरे में ही किसी कोने में पेशाब करती थी, क्योंकि अंधियारी कोठरी की बन्द गाढ़ी हवा में अमोनिया की तीखी गन्ध मौजूद होती।"[9]

उसके साथ यह व्यवहार किसी पराये के द्वारा नहीं बल्कि स्वयं उनके बेटा–बहू–बेटी के द्वारा किया जाता है। उस करधन को पाने की आशा में जिसका कहीं अस्तित्व ही नहीं है। कहानी अपने कथ्य के माध्यम से पाठकों की संवेदना को झकझोरती है और यह बताती है कि पूंजीवाद अपनी चरमता में मानवीय भावनाओं को किस तरह नष्ट कर देता है।

'अंत में प्रार्थना' ऐसे डॉक्टर की कहानी है जो इस भयावह होते परिदृश्य में मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए संघर्षरत है। भारतीय राजनीति का अपराधीकरण और सम्प्रदायीकरण के साथ–साथ आदिवासियों की अस्मिता के उपर प्रहार को बड़ी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती है। "'पी. एम.' ढींगर गाँव इसलिए आए थे कि वे एशिया के सबसे बड़े अमेरिका के सहयोग से विश्व बैंक के कर्ज और कॉरपोरेट किंग फिरोजलाल मलकानी की पूंजी में बनने वाले कागज के कारखानें का शिलान्यास करे। कागज का कारखाना कागज का उत्पादन करने के लिए टींगर गाँव के सारे पेडों को खा जाएगा। जंगल उनके लिए रॉ मटैरियल है। कच्चा माल। पीपल, सागौन, शीशम, सरई, कहुवा, महुवा, कोसम, छिउला कुछ नहीं बचेगें। जंगलों पर निर्भर आदिवासी शहरों में बनने वाली इमारतों या ऐसी ही किन्हीं दूसरी परियोजना में सस्ती दिहाड़ी महदूर और फर्जी मास्टर रोल पर काम करने वाले लेबर बन जाएंगे। अगरिया, बंसोर, मिम्मा, ढींगर आदि जातियों का पारम्परिक दस्तकारी कुटीर उद्योग खत्म हो जाएगा।"[10]

जनतंत्र के मौजूदा ढांचे में जनता की क्या स्थिति है इसे भी 'अंत में प्रार्थना' कहानी का 'महामारी और जिलाधीश' खण्ड बखूबी उकेरता है। आदिवासी अंचल में जलप्रदूषण के कारण महामारी फॅल रहीं थी। डॉ. वाकणकर हालात पर काबू पाने के लिएउ प्रशासन से सहयोग चाहते हैं। किन्तु सहयोग तो दूर जिलाधीश से उन्हें कोई आश्वासन तक प्राप्त नहीं हो पाता। प्रशासन की अनदेखी उन्हें यह सोचने पर मजबूर कर देती है जैसा कि उन्होंने अपनी डायरी में लिखा– "उनकी आँखों में कहीं चिंता या दया के निशान नहीं थे। अगर उनमें से किसी का अपना बच्चा मर रहा होता तो क्या वे यही व्यवहार करते ? क्या मैं सचमुच आदर्शवादी हूँ ? लेकिन ऐसा तो नहीं लगता। अगर दो घंटे के लिए मुझे जीप मिल जाती और मैं कुछ लोगों को बचाा लेता, तो इससे सरकार व प्रशासन का क्या अहित होता ?

कहीं ऐसा तो नहीं कि जो तंत्र या व्यवस्था यहाँ बनी हुई है, वह अपने आप में एक सामानांतर प्रणाली है ? वह सिर्फ अपनी ही दुनिया की चिंताओं में व्यस्त है।

शायद उनका हित ही इसमें जुड़ा हो तो लोग भूख, गरीबी, महामारी आदि से मरे ?

कहीं हमारे देश में लोकतंत्र का असली अर्थ जनता द्वारा अपनी शत्रु व्यवस्था का चुनाव तो नहीं है।"[11]

उपर्युक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि जनतंत्र में काम कर रही तमाम प्रणालियों मनुष्य विरोधी एवं भविष्यहीन है। वाकणकर के चरित्र को उद्घाटित करते हुए परमानंद श्रीवास्तव कहते हैं– "वाकणकर अपनी विचारधारा के अंत तक आस्था बनाये रखने के प्रयास में लगे रहते हैं और पूरी व्यवस्था, सत्ता, तंत्र, अपराधी, तांत्रिक न्याय–व्यवस्था के अनैतिक मानव विरोधी चरित्र को बेनकाब करने के लिए सबकुछ दाँव पर लगा देते हैं।"[12]

समकालीन भारतीय समाज की एक बड़ी विसंगति देश में फैली शिक्षित बेरोजगारी है। हताश एवं निराश युवा बेरोजगारी से लड़ते–लड़ते तंग आ चुका है। ऐसी ही एक कहानी मोहनदास हैं जिसका नायक शिक्षित बेरोजगार कृषक है जो कभी अपने अस्तित्व के खोज में टूटता है बिखरता है कभी खुद को समेटता है। मोहनदास एम. जी. डिग्री कॉलेज से ग्रेजुएट है वह भी फर्स्ट डिवीजन के साथ। मेरिट में दूसरे नम्बर पर। किन्तु उसकी स्थिति आज याचक से कम नहीं है। कपडों में जगह–जगह पैबंद लगा हुआ है। उसने कोलियरी में नौकरी के लिए इंटरव्यू दिया है। जिसमें वह सभी प्रतियोगियों में शीर्ष स्थान पर है। उसे भर्ती का आश्वासन देकर सर्टिफिकेट एवं मार्क्सशीट जमा करा दिया गया। किन्तु उसे नौकरी नहीं मिली। उसके बदले में कोई विश्वनाथ नाम का व्यक्ति नौकरी कर रहा है। मोहनदास के नाम से– "बिसनाथ

वहाँ मोहनदास के नाम से पिछले चार सालों से डिपों में सुपरवाइजर की नौकरी कर रहा है और वह भी दस हजार से उपर हर महीने पगार ले रहा है।"[13]

मोहनदास इसका प्रतिरोध करता है। अधिकारियों से इस बाबत शिकायत करता है किन्तु वह स्वयं उनकी बर्बता का शिकार हो जाता है। वह कहता है।– "मैं आप लोगों के हाथ जोड़ता हूँ। मुझे किसी तरह से बचा लिजिए। मैं अदालत में चलकर हलफनामा देने को तैयार हूँ कि मैं मोहनदास नहीं हूँ। मेरे बाप का नाम काबादास नहीं है। जिसे बनाना हो बन जाए मोहनदास मैंने कभी कहीं से बी. ए. नहीं किया। कभी टॉप नहीं किया। मैं किसी नौकरी के लायक नहीं रहा बस मुझे चैन से जिन्दा रहने दिया जाय। अब हिंसा मत करो। जो भी लुटना हो लुटो। अपने–अपने घर भरो।"[14] यह जर्जर लोकतंत्र एवं भ्रष्ट न्याय व्यवस्था की पृष्ठभूमि है जिसमें व्यक्ति स्वयं को बचाने के लिए अपनी पहचान खोने के लिए मजबूर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उदय प्रकाश की कहानियों का फलक अत्यन्त विस्तृत है, उनकी कहानियाँ 'स्व; से प्रारम्भ होकर 'पर' पर पहुँचती हुई समाज की विभिन्न तहों को खोलती हुई पाठक के समक्ष प्रश्न चिन्ह छोड़ जाती है। समकालीन भारतीय समाज की त्रासदी, विडम्बना और धारणाओं से जुड़े हुए प्रश्नों को अत्यन्त कटु एवं साहसपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. समकालीन हिन्दी कहानी बदलते जीवन–संदर्भ–शैलजा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004, पृष्ठ सं. –37
2. अपनी उनकी बात– उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण–2013, पृष्ठ सं.–130–131
3. रात में हारमोनियम–उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2009, पृष्ठ सं.–22
4. परिन्दे–पत्रिका, संपादक–राघवचेतन राय, वर्ष–1, अंक–1, जून–जुलाई–2008, पृष्ठ सं.–35
5. कहानी के नये प्रतिमान–कुमार कृष्ण, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005, पृष्ठ सं.–127
6. दरियाई घोड़ा–उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण–2010, पृष्ठ सं.–115
7. हिन्दी कहानी का इतिहास–3 गोपाल रॉय, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2014, पृष्ठ सं.–109
8. तिरिछ–उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2014, पृष्ठ सं.–42
9. रिरिछ–उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2014 पृष्ठ सं.–49
10. और अंत में प्रार्थना–उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ सं.–151
11. वही, पृष्ठ सं.–141
12. कहानी की रचना प्रकिया–परमानन्द श्रीवास्तव, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2012, पृष्ठ सं.–273
13. मोहनदास–उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2009, पृष्ठ सं.–30
14. वही, पृष्ठ सं.–85